अप्रेल १९९१ हिंदी पत्रिका में प्रकाशित

पुक्कुसाति (१)

धरम रतन उपहार!

विपश्यना साधना पर भगवान बुद्ध द्वारा दिए गए एक परम कल्याणकारी उपदेश के संदर्भ में एक और चित्र उभरकर आया है, जिसमें मगधनरेश बिम्बिसार की धर्म मैत्री उजागर होती है।

उन दिनों न तो यातायात के और न ही संवाद-संचार के साधन आज जैसी त्वरा और सुविधापूर्ण थे। अतः दूर-दूर देशों के पारस्परिक राजनयिक संबंध स्थापित करना सरल नहीं था। बिम्बिसार अपने स्वभाव से ही सुदूर देश के राजाओं से मैत्री संबंध स्थापित किया चाहता था। अतः ऐसे अवसर देखते रहता था, जिससे उसका मन्तव्य पूर्ण हो।

एक बार गंधार देश की राजनगरी तक्षशिला से कुछ व्यापारी उस ओर की उपज का सामान मगध देश में बेचने तथा यहां की उपज का सामान खरीदकर अपने देश में ले जाने के लिए राजगिरि आए। उन दिनों व्यापारियों के ऐसे 'सार्थ' याने 'कारवां' के जरिए ही दो देशों का पारस्परिक व्यापार-वाणिज्य चलता था। यह व्यापारी राजगिरि पहुँचने पर, उन दिनों की मान्य प्रथा का पालन करते हुए सर्वप्रथम महाराज बिम्बिसार को नजराना भेंट करने के लिए, उसके दर्शनार्थ राजदरबार में पहुँचे।

कुशल-क्षेम पूछने के बाद बिम्बिसार ने प्रश्न किया –"किस देश से आए हो?"

"तक्षशिला से महाराज!"

"कौन शासक है तुम्हारे देश का?"

"राजनरेश पुक्कुसाति, महाराज!"

"क्या वह धर्मिष्ठ राजा है?"

"अत्यंत धर्मिष्ठ है महाराज! प्रजा का पालन अपनी संतान की भांति करता है। प्रजा के सुख-दुख को अपना सुख-दुख समझता है।"

"क्या उम्र है उसकी?"

"आप जितनी ही महाराज!"

"उम्र में भी मेरे बराबर और प्रजा-वत्सलता का राजधर्म निभाने में भी मेरे समकक्ष। तब तो ऐसे व्यक्ति से मैं अवश्य मैत्री संबंध स्थापित किया चाहूंगा। वणिकों, क्या तुम मेरी इच्छा-पूर्ति में सहायक बन सकते हो?"

"अवश्य महाराज!"

"तो जाओ, व्यापार-धंधे का काम पूरा करके स्वदेश लौटने के पहले मुझसे एक बार फिर मिल लेना। तुम्हारे माध्यम से मैं तुम्हारे नरेश के प्रति मैत्री संदेश भेजूंगा।"

"ऐसा संदेश ले जाने में हमें अत्यंत प्रसन्नता ही होगी महाराज!"

कुछ दिनों बाद अपने साथ लाए हुए गंधारी उपज का सामान बेचकर, मागधी उपज का सामान खरीदकर स्वदेश लौटने लगे तो वायदे के अनुसार महाराज बिम्बिसार से मिलने आए।

महाराज बिम्बिसार ने कहा, "नरेश पुक्कुसाति से मिलने पर मेरी ओर से बार-बार उसका कुशल-क्षेम पूछना और कहना कि मैं उसे अपना मित्र बनाने के लिए उत्सुक हूं। उसके प्रति मेरा गहरा मित्रभाव प्रकट करना।"

व्यापारियों ने स्वीकृति दी और प्रसन्नचित्त स्वदेश लौटे। तक्षशिला में गंधार नरेश पुक्कुसाति से मिलकर उसे मगध सम्राट का मैत्री संदेश दिया। पुक्कुसाति बहुत आह्लादित हुआ। उसने व्यापारियों के प्रति अपना आभार प्रकट किया। मगध जैसे विशाल, शक्तिशाली साम्राज्य के सम्राट से मित्रता होनी गंधार नरेश के लिए सचमुच गौरव की बात थी। इस मैत्री को अधिक पुष्ट करने के लिए उसने समझदारी के अनेक राजनयिक कदम उठाए।

कुछही दिनों में मगध देश से व्यापारियों का एक सार्थ वाणिज्य हेतु तक्षशिला पहुँचा। यह व्यापारी जब भेंट-नजराना लेकर गंधार नरेश से मिलने आये तो उसने प्रसन्नता प्रकट की। मगध नरेश के कुशल स्वास्थ्य के बारे में पूछ-ताछ की और यह घोषणा की कि यह व्यापारी मेरे मित्र के देश से आए हैं। अतः मेरे अतिथि हैं, गंधार राज्य के अतिथि हैं। उसने तक्षशिला नगर में भेरी बजवा दी कि मेरे मित्र मगध सम्राट के देश से जो व्यक्ति गंधार देश में व्यापार करने आए, अकेला या सार्थ समूह के साथ, पैदल या गाड़ी पर, जैसे भी आए, उसे राजकीय मेहमान माना जाए। साथ-साथ यह भी ध्यान रखा जाए कि मेरे मित्र देश के नागरिक होने के कारण ऐसे लोगों की सुरक्षा का विशेष प्रबंध हो। उन्हें राजकीय कोष्ठागार (अतिथिशाला) में ठहराया जाय। उन्हें मेरे देश में कोई कष्टन हो। उनके साथ आए बिक्री के सामान पर कोई आयात चुंगी न ली जाय।

सम्राट बिम्बिसार को जब यह सूचना मिली तो उसने भी महाराज पुक्कुसाति को अपना अदृश्य मित्र घोषित करते हुए अपनी राजधानी में यह डूंडी पिटवा दी कि गंधार देश के व्यापारियों को वह सारी सुविधाएं दी जायं जो कि मगध के व्यापारियों को गंधार देश में दी जाती हैं।

आजकल भी दो राष्ट्रों में मैत्री संधि होने पर आवागमन, आयात-निर्यात और चुंगी की मुआफी अथवा अन्य राष्ट्रों के मुकाबले कम चुंगी लिए जाने का प्रावधान होता है। मित्र राष्ट्र को 'मोस्ट फेवर्ड नेशन' घोषित किया जाता है और 'डयूटी-फ्री' या 'डयूटी-प्रिफरेंस' की सुविधा दी जाती है। वर्तमान युग की इसी राजनयिक नीति का यह पूर्व संस्करण हमें इस चित्र में देखने को मिलता है। परन्तु विशेषता यह है कि उन दिनों मित्र राष्ट्र के नागरिकों को राज्य-अतिथि का सा सम्मान भी दिया जाता था। परन्तु यह तभी संभव था, जबकि लोगों का आना-जाना बहुत सीमित संख्या में हुआ करता था। जो भी हो, उपरोक्त घटना यह साबित करती है कि उन दिनों के भारत में भी दो देशों की मित्रता निभाने के लिए इस प्रकार की सुविधाएं दी जाती थीं। हां, यह अन्तर अवश्य था कि एकतंत्र शासकों का राज्य होने के कारण दो शासकों की व्यक्तिगत मैत्री ही दो राष्ट्रों की मैत्री में बदल जाती थी। जैसे कि मैत्री तो बिम्बिसार और पुक्कुसाति में हुई और उसका लाभ दोनों देशों के नागरिकों को और उनके पारस्परिक व्यवसाय-व्यापार को मिला।

दोनों शासकों का मैत्रीभाव दिनोंदिन दृढ़ से दृढ़तर होता गया। एक दूसरे को देख नहीं पाए, परन्तु समय बीतते-बीतते पारस्परिक पत्राचार से तथा बहुमूल्य उपहारों के आदान-प्रदान से अत्यंत पुष्ट हो गया।

जैसे आज के कश्मीर में वैसे ही उन दिनों के कश्मीर में भी, जो कि गंधार देश का एक अंग था, बहुमूल्य ऊनी शाल-दुशाले बनते थे, जो कि मगध जैसे मध्यदेश में दुर्लभ थे। एक बार पुक्कुसाति ने अपने मित्र को आठ बहुत कीमती और खूबसूरत पँचरंगी ऊनी शालें भेजीं, जिनकी बनावट अद्वितीय थी। यह तोहफे की पिटारी बड़ी धूमधाम के साथ राजगिरि भेजी गयी, जहां एक वृहद् समारोह में, राज-आमात्यों और प्रमुख नागरिकों की उपस्थिति में खोली गयी। लोग इन उपहारों को देखकर हर्ष और विस्मय-विभोर हुए। ऐसी बेशकीमती शालें मगधवासियों ने पहले कभी देखी भी नहीं थी, प्रयोग करना तो दूर रहा। कैसा नयनाभिराम रंग! कैसा सुकोमल स्पर्श और कितनी विशाल! प्रत्येक शाल ८ हाथ चौड़ी और १६ हाथ लंबी!

लोगों ने अपनी प्रसन्नता प्रकट करते हुए अँगुलियां चटकाईं और अपने दुपट्टे हवा में उछाले (जिस प्रकार कि आजकल ताली बजाकर हर्ष

प्रकट करते हैं)। बिम्बिसार भी इन उपहारों से बहुत प्रसन्न हुआ। उसने इनमें से चार शालें भगवान के विहार में दान स्वरूप भिजवा दीं और शेष चार राजमहल में। लोग भी इन दुर्लभ उपहारों की प्रशंसा करते हुए अपने-अपने घर लौटे। गंधार नरेश पुक्कुसाति ने अपने मित्र मगधराज को कीमती शाल भेजे; इसकी ख़ूब लोक-चर्चा हुई। राजमहल लौटकर बिम्बिसार सोचने लगा कि मित्र की इस रत्न सदृश बहुमूल्य भेंट के बदले मुझे इससे अधिक मूल्यवान भेंट भेजनी चाहिए। क्या राजगिरी में इससे उत्तम रत्न नहीं है, जिसे उपहार स्वरूप भेजा जाए? अवश्य है।

बिम्बिसार जबसे भगवान के संपर्क में आया और अपने भीतर नित्य, शाश्वत, ध्रुव, अमृतपद निर्वाण का स्वयं साक्षात्कार करके स्रोतापन्न हुआ, तब से बहुमूल्य से बहुमूल्य, महर्घ से महर्घ लोकीय वस्तु उसके लिए स्पृहणीय नहीं रह गयी। यद्यपि वह अपने सांसारिक उत्तरदायित्व को भलीभांति निभाता रहा, पर आसक्तियां टूटने लगीं। अब वह रत्न का सही पारखी बन गया। अतः इसी दिशा में उसका चिंतन चला।

संसार में रत्न तो बहुत प्रकार के होते हैं। हीरे-पन्ने जैसे निर्जीव रत्नों की तुलना में सजीव रत्न उत्तम। हाथी-घोड़े जैसे सजीव रत्नों की तुलना में पुरुष और नारी रत्न उत्तम। सामान्य पुरुष-नारी रत्नों की तुलना में आर्य श्रावक रत्न उत्तम। आर्य श्रावक रत्नों की तुलना में बुद्ध-रत्न ही सर्वोत्तम। मैं सचमुच भाग्यशाली हूं कि मेरे राज्य में बुद्ध जैसा सर्वश्रेष्ठ रत्न विद्यमान है।

बिम्बिसार ने गंधार से आए हुए सार्थवाहकों से पूछा,

"क्या तुम्हारे यहां बुद्ध, धर्म और संघ जैसे रत्न विद्यमान हैं?"

उन्होंने उत्तर दिया, "नहीं महाराज!"

बिम्बिसार ने सोचा, तब तो मुझे यही रत्न भेजने चाहिएँ, जिससे कि मेरे मित्र का भी कल्याण हो और उस जनपद के निवासियों का भी। अभी-अभी भगवान दुर्भिक्ष और व्याधियों से पीड़ित वैशाली नगर जाकर आए हैं। उनके वहां पहुँचते ही दुर्भिक्ष सुभिक्ष में बदल गया। वैशाली की सारी आधि-व्याधि दूर हो गयी। लोग भगवान की शिक्षा की ओर मुड़े। उनका कल्याण हुआ। इसी प्रकार यह बुद्ध रत्न गंधार देश जाए तो सचमुच उनका बड़ा कल्याण होगा। परन्तु वह प्रत्यंत प्रदेश इस मध्यम देश से इतनी दूर है कि वहां विहार करने के लिए भगवान से प्रार्थना करना उचित नहीं लगता।

भगवान के प्रमुख शिष्य सारिपुत्र और महामोग्गलायन को भी वहां जाने के लिए प्रार्थना नहीं कर सकता, क्योंकि उनके यहां रहने से मुझे अपूर्व आश्वासन मिलता है। जब कभी किसी प्रत्यंत प्रदेश में धर्मचारिका के लिए चले जाते हैं तो थोड़े समय के बाद ही संदेशवाहक भेजकर उन्हें राजगृह आने के लिए साग्रह आमंत्रित करना पड़ता है। उनकी अनुपस्थिति में मुझे बड़ा अभाव सा लगता है। अतः उन्हें भी इतनी दूर नहीं भेजा जाना चाहिए। तो क्या करूं?

तत्काल मन में यह बात उपजी कि मेरे मित्र के यहां धर्म पहुँच जाए, तो बुद्ध ही पहुँच गये, संघ ही पहुँच गया। आखिर धर्म ही वह रत्न है जो बुद्ध और संघ में है। अतः मेरे मित्र के पास उपहार स्वरूप धर्म ही भेजना चाहिए। बिम्बिसार ने यह निर्णय किया और शीघ्र ही धर्म का उपहार भेजने की तैयारी में लग गया। उसने स्वर्णकारों से एक बहुत लंबा स्वर्ण पत्र बनवाया। न इतना पतला कि मुड़ने पर टूट जाए और न इतना मोटा कि मुड़ ही न पाए।

जब उपयुक्त स्वर्ण पत्र तैयार होकर आ गया तो महाराज बिम्बिसार सुबह-सुबह नहा धोकर स्वच्छ, श्वेत, सादे कपड़े पहनकर तैयार हुआ। माला, गंध, विलेपन, मंडन तथा अलंकार-आभूषण आदि धारण करने से विरत रहकर उसने अष्टशील व्रत लिया और प्रातः काल का नाश्ता करके राजमहल के खुले बरामदे में आ बैठा। उसने एक स्वर्ण सलाखा हाथ में ली और हिंगुल-सिंदूर द्वारा बने विशिष्ट रंग से बड़ी श्रद्धा पूर्वक उस स्वर्ण पत्र पर लिखना आरंभ किया।

यहां लोक में तथागत उत्पन्न हुए हैं। वे भगवान हैं, अर्हंत हैं, सम्यक् सम्बुद्ध हैं, विद्याचरण संपन्न हैं, सुगत हैं, लोकज्ञ हैं। लोगों को सही रास्ते ले जाने वाले अनुपम सारथी हैं। देवताओं और मनुष्यों के शास्ता हैं। ऐसे हैं भगवान बुद्ध।

तदनन्तर उसने भगवान के जन्म, महाभिनिष्क्रमण, दुष्करचर्या, बोधिवृक्ष तले सम्यक् सम्बोधि के साथ-साथ सर्वज्ञता की उपलब्धि और तत्पश्चात् लोक-कल्याण के लिए की जा रही धर्मचारिका के बारे में संक्षेप में लिखा और बताया कि यहां-वहां तथा परलोक में कहीं भी तथागत जैसा अन्य कोई रत्न नहीं है।

इसके बाद अत्यंत श्रद्धापूर्वक धर्म के बारें में लिखा कि जो भगवान सिखाते हैं वह सुआख्यात है, उसमें रहस्यमयी उलझने नहीं हैं। सांदृष्टिक है, कल्पनाओं से परे है। अकालिक है, तत्काल फलदायी है। स्वयं आकर देखने लायक है, सीधे मुक्ति की ओर ले जाने वाला है, और प्रत्येक समझदार व्यक्ति के लिए स्वयं अनुभूति पर उतारने लायक है।

और फिर भगवान के उपदेशों की संक्षिप्त व्याख्या करते हुए ३७ बोधिपक्षीय धर्मों का विवरण दिया और लिखा कि भगवान जब धर्म सिखाते हैं और उसके अभ्यास द्वारा जो समाधि लगती है, वह लोकीय समाधि ही नहीं, प्रत्युत उसके साथ इन्द्रियातीत फल-समापत्ति भी प्राप्त होती है। निर्वाण की अवस्था का भी साक्षात्कार होता है।

"समाधिमानन्तरिक ञ्ञमाहु।"

इस समाधि का कोई मुकाबला नहीं। धर्म में यह भी अनमोल रत्न है।

और फिर संघ रत्न के बारे में, समझाते हुए लिखा कि भगवान का श्रावक संघ सुमार्गी है, ऋजुमार्गी है, ज्ञानमार्गी है, और समीचीनमार्गी है। भगवान उन्हें ही श्रावक संघ मानते हैं, जो कि स्रोतापन्न अथवा सगदागामी अथवा अनागामी अथवा अरहन्त पद को प्राप्त कर चुके हैं। वस्तुतः ऐसे व्यक्ति परम पूजनीय हैं। इनमें से कितने ऐसे हैं, जिन्होंने राजसिंहासन त्यागा है या उपराज पद त्यागा है अथवा मंत्री या सेनापति पद त्यागा है और प्रव्रजित हुए हैं। यों प्रव्रजित होकर महाशील का पालन करते हुए इन्द्रियों पर स्मृति संप्रज्ञान का पहरा लगाकर संवर करना सीखा है और आस्रवमुक्त अरहंत अवस्था प्राप्त की है।

तदनन्तर उसने १६ प्रकार की आनापान स्मृति साधना की व्याख्या लिखी। जब पत्र समाप्त करने लगा तो एकाएक एक बात ध्यान में आई कि मेरे मित्र के पास पूर्वजन्मों की अच्छी पुण्य पारमी होगी तो पत्र पढ़कर उसके मन में धर्मसंवेग जागेगा। धर्म के सैद्धान्तिक पक्ष से वह बहुत प्रभावित होगा। परन्तु धर्म का परम मुक्तिदायी मार्ग याने विपश्यना उसे कैसे प्राप्त होगी? मध्यदेश के लोग बहुत भाग्यशाली हैं जो भगवान से यह विद्या प्रत्यक्ष सीखते हैं और मेरी तरह सांसारिक जिम्मेदारियों को भी निभाते रहते हैं। लेकिन मेरे मित्र पुक्कुसाति के लिए यह शक्य नहीं होगा। उसका कल्याण इसी बात में है कि वह शासन की जिम्मेदारियां किसी अन्य योग्य व्यक्ति को सौंप दे और स्वयं घर-बार छोड़कर प्रव्रज्या ग्रहण करे और भगवान से विपश्यना सीखकर परम मुक्त अवस्था का साक्षात्कार कर ले। मन में यह भाव आते ही उसने पत्र के अंत में लिखा, "यदि तुम्हारे मन में धर्म संवेग जागे तो यहां आकर भगवान से प्रव्रज्या ग्रहण कर लो और अपनी मुक्ति साध लो।"

क्रमशः....